International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 2; April 2016; Page No. 22-24

बाज़ार का आतंक और हिंदी कहानी

मीनू देवी

शोध–छात्रा, हिन्दी विभाग महर्षि दयानन्द वि"वविद्यालय रोहतक

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ जरूरतों व आकांक्षाओं के अनुरूप बाज़ार का रूप भी बदलता रहा है। आदिकालीन बाज़ार जो वस्तु विनिमय की प्रक्रिया से प्रारंभ हुआ था अब एटीएम कार्ड के रूप में अदृ"य मुद्रा से संचालित हो रहा है। इस प्रकार बाज़ार दिनोंदिन विकराल और अदृ"य रूप में उपस्थित होता जा रहा है। बाज़ार अब जरूरत पूरी करने, वस्तुओं के आदान–प्रदान का क्षेत्र नहीं रह गया है। बल्कि वह अब मनुष्य की सभी इच्छाओं की पूर्ति और निर्माण का क्षेत्र भी बन गया है। अधिकतम लाभ के उद्दे"य से संचालित बाज़ार अब स्वतंत्र रूप से एक अवधारणात्मक स्थिति जैसा हो गया है जिसे बाज़ारवाद कहा जा सकता है ''बाज़ार का मतलब एक ऐसे स्थान से है जो मनुष्य और समाज को सुविधा प्रदान करता है अर्थात् जीवनोपयोगी वस्तुओं के लेन–देन की यह क्रिया ऐसे अर्थों वाले बाज़ारों में मनुष्यता के शा"वत सामान्य गुणों, मनुष्यों के बीच के आपसी रि"तों को बगैर हानि पहुँचाए सम्पन्न होती है।''[1] बाज़ार का यह सुविधा प्रदान करने वाला प्राचीन रूप प्रायः लुप्त हो गया है। बाज़ार के इस आरंभिक पहलू में माल और व्यापारी वर्ग महत्त्वपूर्ण घटक थे जिनके द्वारा वस्तु विनिमय किया जाता था। लेकिन अब बाज़ार के घटकों में विज्ञापन को अनिवार्य रूप से जोड़ दिया गया है। बाज़ार के बनने और उसकी आरंभिक अवस्था के बारे में एंगेल्स लिखते हैं ''अब हम सभ्यता के द्वार पर पहुँच जाते हैं। श्रम विभाजन में एक और नए कदम के साथ इस युग का श्री गणे"ा होता है। निम्न अवस्था में मनुष्य केवल सीधे–सीधे अपनी जरूरतों के लिए उत्पादन करता था विनिमय केवल कहीं– कहीं पर होता था, जहाँ कि अचानक बे"ाी पैदावार हो जाती थी।''[2] यह बाज़ार की आरंभिक स्थिति थी। यहाँ विनिमय के लिए चीजों का उत्पादन नहीं किया जाता था। वस्तु उत्पादन जरूरतों को पूरा करने के लिए होता था यहाँ विनिमय अचानक बे"ाी पैदावार पर निर्भर था। उपनिवे"ावादी युग में कृषि से होने वाली पैदावार से व्यापारिक हितों की पूर्ति की जाने लगी जिससे बाज़ार व्यवस्था स्थायी रूप से काम करने लगी।

नये–नये उत्पादनों, खोजों–आविष्कारों ने बाज़ार को व्यापक रूप प्रदान किया पूँजीवाद की आरंभिक दो अवस्थाएं व्यापारिक पूँजीवाद और औद्योगिक पूँजीवाद के दौर में बाज़ार भी लगातार विकसित होता चलता है। बाज़ार पर कब्जे की लड़ाईयाँ होती हैं। उपनिवे"ावादी साम्राज्य का जन्म होता है। व्यापार का स्वरूप भी अधिकाधिक एकतरफा और लूट पर केन्द्रित होने लगता है। कच्चे माल के क्षेत्रों पर कब्जा स्थापित किया जाता है फिर निर्मित माल की बिक्री के लिए बाज़ार पर प्रभुत्व जमाया जाता है। वर्तमान में बाज़ार अभूतपूर्व रूप से विकसित ही नहीं हुआ बल्कि उसने अपने स्वरूप, कार्य"ौली में भी बड़े परिवर्तन घटित किये हैं। अब यह संचार के विभिन्न माध्यमों टेलिविजन, फोन, इंटरनेट आदि द्वारा अपना क्षेत्र विस्तार कर रहा है। मुद्रा भी धातु या कागज से आगे बढ़कर अत्यन्त संचरण"ाील रूप में अदृ"य रूप में भी, अपनी भूमिका निभा रही है। व्यापारी वर्ग ने अपने व्यापार के विस्तार के लिए बाज़ार को भूमंडलीय रूप में विस्तृत और सुदूर गाँव, देहातों, दुर्गम क्षेत्रों तक पहुँचा दिया है। माल भी अनेकानेक नए रूपों में प्रस्तुत होने लगा है। अब बाज़ार एक विचार प्रणाली बन गया है जिसे बाज़ारवाद नाम से जाना जाने लगा है। इस बाज़ार ने नये समाज और मनुष्य को भी निर्मित करने का प्रयास किया है। बाज़ार के वर्तमान आचरण से निर्मित संस्कृति को उपभोक्ता संस्कृति भी कह सकते हैं। इसकी निर्मिति बाज़ार के नए विकसित चरण और उसके अपने निरंतर विकास की आकांक्षा के विचार को प्रकट करती है। ''बाज़ार का वर्तमान जटिल रूप आधुनिक विज्ञान, बड़े उद्योग और बड़ी म"ाीनों द्वारा एक ही स्थान पर बड़ी मात्रा में उत्पादन के कारण देखने को मिला ... इन बाज़ारों से एक अवांछित, गैर जिम्मेदार और फिजूलखर्च मनुष्य का विकास होता गया। मानवीय समाज बिखर गया। असमान शर्तों पर होने वाले व्यापारिक लेन–देन में आर्थिक गैर–बराबरी की यह क्रिया व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के स्तर पर जारी है।''[3] वर्तमान बाज़ार की कार्यप्रणाली नि"चित रूप से वर्ग भेद को पढ़ाने वाली है। जिसमें अमीर अधिकाधिक अमीर और गरीब और अधिक गरीब होता जा रहा है।

पूँजीवाद के सर्वव्यापीकरण की प्रक्रिया में भूमंडलीकरण मुस्तैद है, सक्रिय है, वह बाज़ार के अधिकाधिक प्रबल और व्यापक होते रूप में हमारे सामने आ रहा है। बाज़ार के वर्तमान आचरण के लिए हिंदी में बाज़ारवाद शब्द प्रचलित हुआ है, जिसके मूल में पूँजीवाद का साम्राज्यवादी चेहरा छिपा है। बाज़ारवाद साम्राज्यवादी आकांक्षा को पूरा करने के लिए अपनाया गया नई गुलामी का औजार है। बाज़ारवाद के इस स्वरूप के संदर्भ में अर्थ"ाास्त्री श्रीकांत मिश्र ने 'गुलामी का नया मंत्र' शीर्षक पुस्तक में लिखा है – ''बाज़ारवाद आज के समय की एक स"ाक्त विचारधारा है। दरअसल यह पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का ही छद्म रूप है। चूँकि पूँजीवाद विचारधारा पर अनेक शंकाएँ की जाती हैं और साम्राज्यवाद पूँजीवाद का ही द्यिनौना रूप है इसलिए अब प्रकट रूप से पूँजीवाद की बात करने के बजाय बाज़ारवाद की बात की जाती है।''[4] पूँजी के विकास को बाज़ार के विकास का मुखौटा पहनाकर उसे सकारात्मक रूप में दिखाया जाता है। इसीलिए पूँजीवाद की बात न कर अब बाज़ारवाद और उसके विकास की बात की जाती है।

उपभोग के बिना आदमी की जिंदगी की कल्पना नहीं की जा सकती आदमी को उसकी जिंदगी की जरूरतें पूरी करने वाली और उसे बेहतर बनाने वाली चीजें चाहिए। यह स्वाभाविक है कि बदलती दुनिया के साथ उपभोग का स्वरूप बदलता है तथा उपभोग के बदलते स्वरूप के साथ दुनिया बदलती है, फिर भी एक खास समय तक उपभोक्ता वस्तुओं के साथ दे"ाप्रेम सामाजिकता और मानवीय संवेदना का भरा पूरा संसार सुरक्षित था। कहानी विधा के विकास से पूर्व हमें इस तरह के बाज़ार का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। जैसे कबीर का बाज़ार आज का बाज़ार नहीं है वह बाज़ार नई कारीगर जातियों के पैदा होने के साथ अस्तित्व में आया था। ये कारीगर अपनी अतिआव"यक जरूरतों को पूरा करने के लिए बाज़ार में सामान बेचते थे। आधुनिक काल में भारतेंदु द्वारा रचित नाटक 'अंधेर नगरी' के बाज़ार में चूरन और चने के गीत के बीच में प्रतिरोध का एक नया पाठ पैदा हो रहा था। लेकिन वह

बाज़ार ऐसा नहीं है जिसकी मंदी एक लेखक के लिए चिंता का विषय बन जाए। बाज़ार के प्रभाव से विवेक शून्यता 'अंधेर नगरी' में गोबरधनदास में भी आ जाती है। लेकिन वहाँ बाज़ार की विरोधी शक्तियाँ गुरू महंत और नारायणदास के रूप में भी मौजूद है। यह विवेकशून्यता बाज़ार की न होकर सत्ता की विवेकशून्यता हैं। इसी तरह 'प्रेमचन्द' की 'ईदगाह' कहानी में वर्णित बाज़ार 'आगरा के बाज़ार' को देखा जाए तो वह बाज़ार आज के बाज़ार की भांति व्यक्ति को चमत्कृत व उत्तेजित करने का काम नहीं करता। वे बाज़ार कभी–कभी सजते थे लोग प्रेम व उत्साह के साथ एकत्रित होकर जाते थे। ये बाज़ार लोगों को अपने सुख–दुःख कहने–सुनने की जगह होते थे। जहाँ जाने का विचार उन्हें उमंग और उत्साह से भर देता था। लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार जरूरत की वस्तुएँ खरीदकर लाते थे। आज के बाज़ार का स्वरूप बिल्कुल अलग हो गया है, जहाँ बाज़ार पर राष्ट्र व राजनीति का नियंत्रण लगभग समाप्त सा हो गया है यह एक ऐसा बाज़ार है जिसकी आड़ में तीसरी दुनिया के देशों पर एक नवद्यौगिकीकरण को थोपा जा रहा है। इस तथाकथित मुक्त बाज़ार की वकालत करते हुए सम्पूर्ण विश्व पर अमेरिका का वर्चस्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभावों को हिंदी कहानियाँ भी रेखांकित करती है। कुछ कहानियों में बाज़ारवाद की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया गया है जिसका अध्ययन प्रासंगिक होगा। 'पिंटी का साबुन' संजय खाती की यह कहानी 1990 में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में वाचक को एक बार दौड़ से जीतने पर साबुन का उपहार मिलता है यह साबुन उसकी किसी जरूरत को पूरा करने का साधन नहीं है। क्योंकि इससे पहले और बाद में भी उसके सभी काम साबुन के बिना ही चलते हैं। उपभोक्ता वस्तु का प्रचलन व्यक्ति को विवेकशून्य बनाता है। जरूरी गैर–जरूरी का भेद खत्म होना ही विवेकशून्यता है। व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में स्थापित करने का कार्य बाज़ारवाद करता है। इस कहानी में बाज़ारवाद की संवेदनहीनता को नए उत्पाद के आ जाने से वाचक में आने वाली संवेदनहीनता के रूप में दिखाने की सफल कोशिश की है। यहाँ वह संवेदनहीन और विशेष हो जाता है। विशेष होकर वह रोज परिवार के सदस्यों से अलग हो जाता है। उपभोक्तावाद इसी अर्थ में पृथकता लाने का कार्य करता है। वह विशेष होने का भाव उपभोक्ता में भरता चलता है। यह उपभोक्तावाद घोर व्यक्तिवादी मनुष्य रच रहा है। ''उपभोक्ता, उपभोक्ता वस्तुओं और राष्ट्रीय संस्कृतियों का पारस्परिक संबंध टूटना ही उपभोक्तावाद है। उपभोक्तावादी संस्कृति में आदमी की अपनी रूचियाँ, प्रतिक्रियाएँ और स्वप्न सो जाते है वह बड़ी आसानी से वस्तुओं के छली बिंबों में फंस जाता है। वह कृत्रिम इच्छाओं का शिकार हो जाता है। उपभोक्ता को अपनी अभिरूचियों, हितों और जरूरतों से उपभोक्ता वस्तुओं को कोई संबंध नहीं रह जाता क्योंकि वे सुख और प्रतिष्ठा के चिन्ह होती है।''[5] उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में आया मनुष्य धीरे–धीरे आत्मकेंद्रीत हो जाता है। इसे हम बाज़ार का आतंक कह सकते हैं। 'पिंटी का साबुन' कहानी में साबुन उपभोग की वस्तु है जिसके कारण वह खुद को अकेला भयभीत, विशिष्ट समझने लगता है। अपने परिवार के व्यक्ति उसे दुश्मन दिखाई देने लगते है ''इस तरह माँ मेरी दूसरी दुश्मन बनी। असल में साबुन की इस महता को मैं पहले समझ ही नहीं पाया। शायद समझने की उम्र भी नहीं, लेकिन जल्द ही मुझे लगने लगा मैं चारों ओर दुश्मनों से घिर गया हूँ।''[6] जो वस्तुओं का अनावश्यक उपभोग है। वह समाज में और व्यक्ति में कुछ गैर–जरूरी परिवर्तन भी ला रहा है इसी कहानी में आगे एक उद्धरण दृष्टव्य है ''काका से पहली बार गहरी दुश्मनी की यह शुरूआत थी। उस वक्त तो मैं साबुन की उसी भीनी खुशबू में इतना मगन था कि काका की ओर ध्यान देने का वक्त नहीं था मेरे पास, लेकिन आगे चलकर हम दोनों की दुश्मनी स्थायी बात हो गयी।''[7] उपभोक्तावाद का ठीक इस कहानी की भांति मानवीय संबंधों पर प्रभाव पड़ता है। जो पारिवारिक व सामाजिक संबंधों को बुरी तरह प्रभावित करता है। युवा ताकतवर हो जाते हैं बुजुर्ग पृष्ठभूमि में चले जाते हैं।

वर्तमान युग में विश्व बाज़ार विज्ञापनों के माध्यम से आम आदमी को एक सब्जबाग दिखाता है जो सस्ते का ढोंग भरकर अपने जाल में फँसाता है, अपनी चीजों की लत लगा देता है। आकर्षक विज्ञापनों द्वारा उपभोक्ता को समझाया जाता है कि उत्पाद विशेष को कौन–कौन से अभिनेता, गायक, खिलाड़ी तथा विशिष्ट व्यक्ति उपभोग करते है और अगर आप उपभोग करेंगे तो आपकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी। बाज़ार एक नशा पैदा करता है। जिसके सुख में व्यक्ति नाक तक डूब जाना चाहता है। 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' पंकज बिष्ट की कहानी में विज्ञापनों के प्रपंच में फंसने वाले गरीब बिशनदत्त की दुर्दशा व मृत्यु दिखाई गयी है। पड़ोसियों के घर टी०वी० देखकर वह किस्तों पर टी०वी० खरीद लेता है जिसके कारण उसे कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। ''सौ की चावला की और 50 की प्रोविडेंट फंड की किस्त में मिलकर आठ सौ रूपये की तनख्वाह साढ़े छह सौ कर दी। ऐसे में कहाँ कटौती होती है, हम सभी जानते हैं। एक तो पुरानी बीमारी, ऊपर से पाँच प्राणियों का परिवार, जिसमें ज्यादा बच्चे। पत्नी दूध पीने की सीमा से लगातार बाहर रही थी, इसलिए दूध बिशन का ही कटा यदा–कदा के मौसमी फल भी अब गैर मौसमी से बेगाने हो गए और सब्जियाँ कौर को हलक में अटकाने लगी।''[8] सीमित आय वाला व्यक्ति जब बाज़ार की चपेट में आता है। तो महीने का खर्च चलाना भी मुश्किल हो जाता है। पश्चिमी संस्कृति का वर्चस्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। बिग मीडिया, सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी मुख्यतः पश्चिमी संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने में लगे हैं। अमेरिका की हॉलीवुड की फिल्मों का प्रचार भी सांस्कृति उद्योग है जो दूसरे देशों की संस्कृति को प्रभावित कर रहा है। फिल्म देखने के लालच के कारण बिशनदत्त अपनी बिमारी का ईलाज कराने अस्पताल समय पर नहीं पहुँचता और विज्ञापन देखते–देखते उसकी मृत्यु हो जाती है। विज्ञापनों के आक्रामक प्रचार ने इन्सान के समक्ष जरूरी और गैर जरूरी इतने अधिक उत्पाद प्रस्तुत कर दिए है। जिससे उपभोक्ता के सामने वरण करने की समस्या पैदा होती है। मनोरंजन और उपभोग की जो विदेशी वस्तुएं यहाँ आ रही है अब वे ही संस्कृति बनती जा रही है। उदाहरण के रूप में 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' कहानी का विज्ञापन देखिए –

> ''शक्तिशाली हष्ट–पुष्ट और
> चुस्त–दुरूस्त बनने का राज
> शक्ति ! शक्ति ! शक्ति !

आपके लिए जरूरी सभी आवश्यक विटामिनों और प्रोटीनों से युक्त, विश्व का प्रसिद्ध अमरीकी कम्पनी के सहयोग से बना एक सम्पूर्ण खाद्य !

> 'शक्ति' अपनाइए दारा हो जाइए ....''[9]

इस तरह विज्ञापनों के प्रचार से हमारा, खान–पान, रहन–सहन व विचारधारा प्रभावित हो रही है। विश्व में मुक्त आचरण, मनोरंजन और फास्ट फूड के ठिकाने बढ़ते जा रहे हैं। व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को खोता जा रहा है। मनुष्य के अन्दर हीनताबोध की सृष्टि हो रही है जो उसे हैसियत ना होने पर भी उपभोक्ता बनने के लिए मजबूर करती है।

बढ़ते बाज़ारवाद के युग में सम्पन्न व्यक्ति और राष्ट्र इस स्थिति में आनंद का अनुभव करते हैं। क्योंकि उसके सामने कोई द्वंद्व नहीं हैं,

वह हर वस्तु को खरीदने में समर्थ है जबकि बाज़ारवाद के शिकंजे में पड़कर दम घुटने वाला आम आदमी दिग्भ्रमित होकर खड़ा हो जाता है क्योंकि बाज़ार की शक्ति के सामने उसका सामर्थ्य निरर्थक साबित होता है। अखिलेश की दो कहानियाँ विचारणीय हैं 'जलडमरूमध्य' और 'शापग्रस्त' इन दोनों कहानियों में कोई एक समस्या केंद्र में नहीं है। लेकिन फिर भी उपभोक्तावाद–बाज़ारवाद ने जो नया मनुष्य निर्मित किया है या जो परिवर्तन से सामना करते व्यक्ति की यातना का चित्रण 'जलडमरूमध्य' में किया गया है। वहीं उपभोक्तावाद की अंतहीन दौड़ और फिर निरर्थकता बोध का सामना करते हैं। 'शापग्रस्त' कहानी में प्रमोद वर्मा की सुखी बनाने–होने की अंतहीन चाह उपभोक्तावाद की देन है। 'शापग्रस्त' कहानी में प्रमोद वर्मा जो अब तक सुखी–सम्पन्न था उपभोक्ता वस्तुओं से घिरा था। लेकिन एक दिन उसकी पत्नी उससे अनायास ही उपभोक्तावादी जीवन आचरण की फरमाइश करते हुए उससे कहती है ''ये सब नहीं चलेगा जी सफेद निकर और ऐक्शन शू पहनकर जागिंग करिए। फिर शीशे के सामने खड़े होकर तौलिया से पसीना पोंछें।''[10] ऐसा सुनकर उस पर अप्रत्याशित प्रभाव पड़ता है। वह इस उपभोक्तवादी जीवनशैली व प्रतिमानों पर खरा न उतर पाने पर निरर्थकता बोध महसूस करता है। वह निरन्तर काम करता है ताकि 'सुखी' महसूस करे लेकिन परिणाम कुछ नहीं निकलता। उसकी पत्नी सरोज वर्मा उससे पूछती है ''आप चाहते क्या हैं ?'' ''मैं सुखी होना चाहता हूँ।''[11] यह सुख उपभोक्तावाद का ब्रह्मवाक्य है। इसकी खोज, इसे पाने की चाह सभी उपभोक्ता करते हैं। लेकिन अंततः सुखी नहीं निरंतर दुःख बेचैन होते जाना ही उपभोक्तावाद की नियति है। प्रमोद वर्मा भी 'सुख' की चाह में निरंतर बेचैन हो जाता है। उपभोक्तावाद ने लोगों को संघर्ष से दूर आत्मग्रस्त व्यक्ति में रूपांतरित कर दिया है जब जीवन में संघर्ष नहीं दुःख नहीं, विरोधी स्थितियों की उपस्थिति नहीं होगी वह सच्चे सुख को अनुभव नहीं कर सकता। डॉ० नीरज खेर ने 'शापग्रस्त' कहानी के संदर्भ में लिखा है – ''अखिलेश ने 'शापग्रस्त' कहानी में उपभोक्तावादी दौड़ में संवेदनशील किस्म के लोगों की एक अंतर्विरोधात्मक समस्या का उद्घाटन किया है। एक ओर उपभोक्तावादी लक्ष्यों के पीछे भागते जीवन में निरर्थकता का एहसास तो दूसरी ओर जीवन में सार्थकता की निरंतर तलाश के बाद भी उस रास्ते पर न चल पाने की मजबूरी है परिणामतः उपभोक्तावादी सुख–सुविधाओं और हर चीज घर में होने के बावजूद कहानी का नायक मानसिक दुःख से पीड़ित बना रहता है।''[12] उपभोगतावादी संस्कृति से प्रभावित व्यक्ति उपभोग की वस्तुओं का प्रयोग 'स्टेटस सिम्बल' के रूप में करने लगता है जिसके कारण अधिकाधिक पाने की लालसा उसके चित्त में घर कर जाती है जो निरतंर उसके सुख–चैन को छीन लेती है।

'जलडमरूमध्य' कहानी में सहाय जी के मन और जीवन में जो परिवर्तन घटित हुए उनमें बाज़ार और लोभ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। समाज और जीवन में बाज़ार और लोभ एक साथ इतनी बड़ी मात्रा में आ गए है कि व्यक्ति जो इन स्थितियों को आसानी से स्वीकार नहीं कर पा रहा है, वह भौचक्का रह जाता है। वह जहाँ है वहाँ से उसका उच्चाटन हो जाता है। सहाय जी भी चिरैयाकोट से उचट चुके है। सीधे–सीधे कोई एक कारण लेखक नहीं बताता लेकिन एक कारण शहर का बाज़ार में रूपातंरण भी है। बेटे–बहू और पोते के मन में ही नहीं गाँव के लोगों के मन में भी लोभ ने पैर फैला लिए हैं। बेटे–बहू पिता से उनकी संपत्ति–गाँव की जमीन बेचकर फार्म हाऊस खरीदना चाहते हैं। गाँव के लोग छब्बीस कमरों वाले घर को रौंद डालते हैं कि कहीं उसमें से गढ़ा हुआ धन मिल जाए यह बाज़ार का दोतरफा काम है। इस बाज़ारवाद ने जिस संस्कृति को जन्म दिया है वह भूमंडलीकृत संस्कृति है। विकास के नाम पर आने वाली इस संस्कृति में सामाजिक व सांस्कृतिक मामलों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। पुरानी वर्जनाएं टूटी है लोग स्वतंत्रता अनुभव करने लगे हैं वे बड़े पैमाने पर ज्ञान और तकनीक की नयी दुनिया में प्रवेश कर सके हैं साथ–साथ इसके दुष्परिणाम भी सामने आ रहे है जिसने आम आदमी की समस्या को बढ़ा दिया है। गाँव की जमीनों पर कम्पनियाँ स्थापित की जा रही है जिससे किसानों के पास खेती करने के लिए जमीन सीमित होती जा रही है। बाज़ारवाद का इतना अधिक प्रभाव है कि लोग अपने छोटे–छोटे घरों के आगे के हिस्से में दुकानें बनाते है ताकि किराया हर महीने आता रहे। बाज़ारवाद का कब्जा निरंतर बढ़ता जा रहा है 'जलडमरूमध्य' कहानी में एक स्थान पर ''इतनी दुकानों के बनने से चिरैयाकोट बर्बाद हो जाएगा सब जगह दुकानें ही दुकानें हो जाएँगी तो बच्चे कहाँ खेलेंगे और हम बूढ़े लोग सुबह की सैर कहाँ करेंगे।''[13] इस तरह प्रतिदिन उपयोग में आने वाली शहर व गाँवों की जमीनों पर भी बाज़ार का आतंक मंडरा रहा है।

जिस तरह पुरानी मदिरा को नवीन चषकों में डालकर बेचने का प्रयास किया जाए उसी तरह बाज़ारवाद का प्रयोग साम्राज्यवादी और पूँजीवादी ताकते कर रही है। जिसके कारण नवउपनिवेशवाद धीरे–धीरे पैर पसार रहा हो जिससे जीवन की छोटी से छोटी व बड़ी से बड़ी चीज प्रभावित होती है।

सुख, लोभ, लालच की अनंत लालसा में बाज़ारवाद व उपभोक्तवाद फैलता जा रहा है। जीवन के हर क्षेत्र पर बाज़ार अपने पंजे गड़ाता जा रहा है। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद 'यूज एंड थ्रो' की संस्कृति को बढ़ावा देता है। नया उपकरण पुरानी उपकरण को उससे जुड़े मनुष्य को अप्रासंगिक–गैर जरूरी बना देता है। जिदंगी में इतनी नकली जरूरते पैदा हो गई है कि आदमी इन्हें पूरी करने के लिए दौड़ते–दौड़ते रिक्त, तनावग्रस्त और बेदम हो जाता है। इस तरह वस्तुओं की लालसा रखने वाला व्यक्ति नए ढ़ंग के उपनिवेशवाद की गिरफ्त में फंसता जा रहा है। ये कहानियाँ ऐसे ही मनुष्य की दास्ता ब्यां करती ळें

संदर्भ सूची

1. मिश्र, गिरीश, ब्रजकुमार पांडेय, भूमंडलीकरण : मिथ या यथार्थ, अभिद्या प्रकाशन, 2005, पृ० 200
2. एंगेल्स, फ्रेडरिक परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, ग्रंथ शिल्पी संस्करण 2008, पृ० 193
3. मिश्र, गिरीश, ब्रजकुमार पांडेय, भूमंडलीकरण : मिथ या यथार्थ, अभिद्या प्रकाशन, 2005, पृ० 201
4. मिश्र, श्रीकांत, गुलामी का नया मंत्र लोक प्रकाशन गृह, 2009, पृ० 44
5. शंभुनाथ्ज्ञ, भारतीय अस्मिता और हिंदी, सामाजिक प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ० 173
6. खाती, संजय, पिंटी का साबुन, श्रेष्ठ कहानियाँ सं० उमाशंकर चौधर, ज्यौति चावला, संस्करण 2010, पृ० 96
7. वही, पृ० 95
8. पंकज बिष्ट, शताब्दी से शेष, राजकमल प्रकाशन, पृ० 189
9. वही, पृ० 191
10. अखिलेश, शापग्रस्त, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, पहला संस्करण 2004, पृ० 10
11. वही, पृ० 11
12. खेर, नीरज, बीसवीं सदी के अंत में हिंदी कहानी, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, प्रथम संस्करण 2004, पृ० 62
13. अखिलेश, शापग्रस्त, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, पहला संस्करण 2004, पृ० 138